“दुर्वासना प्रतिकार दशकम्”

विद्यारण्य स्वामी कृत संस्कृत टीका व्याख्या सहित

संकलन कर्त्ता सुनील दत्त वशिष्ठ

भूमिका

"ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः" अर्थात् "ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं मिलती" — यह वेद, उपनिषदों और पुराणों की दृढ़, निरंतर प्रतिपादित भावना है। इस सिद्धांत का आधार संपूर्ण वेदांत है, जहाँ अविद्या (अज्ञान) को बंधन का कारण और विद्या (ज्ञान) को मोक्ष का एकमात्र साधन बताया गया है।

"परमात्मा ज्ञान उत्पाद्य (उत्पन्न किया जानेवाला) नहीं है और न ही वह संस्कार्य (संस्कारों से परिपूर्ण किया जानेवाला) है"—यह अद्वैत वेदांत का मूल सिद्धांत है। यह बताता है कि परमात्मा/ब्रह्मज्ञान किसी क्रिया, प्रयोग या बाह्य साधन से उत्पन्न नहीं किया जा सकता, अपितु वह तो नित्य, स्वप्रकाश और सदा उपलब्ध है—जिसे केवल अवरण (आवरण) हटाने से जाना जाता है।

"न हि ज्ञानं किञ्चित् उत्पाद्यते; न ह्यात्मनो रूपान्तरमपि विद्यया क्रियते।"

"ज्ञान कोई उत्पन्न की जाने वाली वस्तु नहीं है। न ही आत्मा का कोई नया रूप विद्या से किया जाता है।"

भावार्थ: आत्मा का ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, वह पहले से ही विद्यमान है। विद्या (श्रवण, मनन, निदिध्यासन) केवल अज्ञान रूपी आवरण को हटाती है।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।"

भावार्थ: ज्ञान का स्वभाव है तत्त्वदर्शन करना — तत्त्व का निर्माण करना नहीं।

*नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।

नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥*

—कठ॰ वल्ली २। मं॰ २४

जो दुराचार से पृथक् नहीं, जिसको शान्ति नहीं, जिसका आत्मा योगी नहीं, और जिसका मन शान्त नहीं है, वह संन्यास लेके भी प्रज्ञान से परमात्मा को प्राप्त नहीं होता।

ब्रह्मज्ञान में कोई साक्षात् साधन नहीं है, बल्कि अधिकारी के अंतःकरण की शुद्धि में ही साधन की उपयोगिता है. अंतःकरण की शुद्धि के उपरान्त ज्ञान में ऐसे ही देर नहीं होती जैसे हमारी गले की कण्ठी को स्मरण होने में या दर्पण को साफ़ होने के उपरान्त उसमें रूप की उपलब्धि में देर नहीं लगती !

ब्रहमज्ञान उत्पाधय या संस्कार्य नहीं, वो तो दुश्चरित्र के कारण छुपा हुआ है, अतः दुश्चरित्र रूपी शत्रुओं का पर्दा हटाए बिना बिना परमात्म ज्ञान संभव नहीं इसलिए उनके विनाश के लिए उनको जानकर उनका त्याग अति आवश्यक हो जाता है,

इसलिए स्वामी श्री विद्यारण्य जी ने समस्त मनुष्य के कल्याण के लिए इस पुस्तक में उन दुश्चरित्रों का वर्णन किया है जिससे साधक उनको जान कर साधन के मार्ग में आगे बढ़ सके !

संकलनकर्ता

"ॐ "

श्लोक १ — जीवन का संपूर्ण साधनामय अनुशासन

प्रातर्वैदिककर्मतस्तदनु सद्वेदान्तसच्चिन्तया।
पश्चाद्भारतमोक्षधर्मकथया वासिष्ठरामायणात्।
सायं भागवतार्थतत्त्वकथया रात्रौ निदिध्यासनात्।
कालो गच्छतु नः शरीरभरणं प्रारब्धकन्ठार्पितम्॥ १॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवादः

प्रातःकाल वैदिक कर्मों का अनुशासन हो, तत्पश्चात् श्रेष्ठ वेदान्त विषयक चिन्तन हो। दिन के मध्य में महाभारत और वासिष्ठ रामायण की मोक्षदायक कथाओं का मनन हो। संध्या के समय श्रीमद्भागवत के तत्वज्ञान की कथा का श्रवण हो और रात्रि आत्मचिन्तन (निदिध्यासन) में व्यतीत हो। शरीर का पालन केवल प्रारब्धवश हो — जीवन का प्रत्येक क्षण आत्मसाधना में समर्पित हो।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण सहित व्याख्या

1. "प्रातः वैदिक कर्मतः"

दिन की शुरुआत वेदविहित नित्य कर्म (सन्ध्यावन्दन, जप, हवन) से होनी चाहिए।

यह वैदिक अनुशासन चेतना को शुद्ध करता है।

उदाहरण: जैसे शरीर की ताजगी के लिए स्नान आवश्यक है, वैसे ही आत्मा के शुद्धि के लिए प्रातःकाल वैदिक संकल्प और आचरण आवश्यक हैं। यह दिन का आत्मिक स्नान है।

2. "तदनु सद्वेदान्त-सच्चिन्तया"

वैदिक कर्मों के पश्चात् आत्मा का चिन्तन हो — वेदान्त के "अहं ब्रह्मास्मि", "तत्त्वमसि" आदि महावाक्यों पर मनन हो।

यह चिंतन बुद्धि को आत्मा की ओर स्थिर करता है।

उदाहरण: जैसे भोजन के बाद पचाने के लिए विश्राम करते हैं, वैसे ही कर्मों के बाद शुद्ध चित्त में ब्रह्मविचार आत्मरस को स्थिर करता है।

3. "पश्चात् भारत-वासिष्ठ-रामायणात् मोक्षधर्मकथया"

दोपहर के समय जब शरीर थोड़ा विश्राम चाहता है — उस समय महाभारत (विशेषतः शान्तिपर्व, अनुशासन पर्व) और योगवासिष्ठ जैसे ग्रंथों का अध्ययन करें।

ये शास्त्र आत्मज्ञान और वैराग्य को दृढ़ करते हैं।

उदाहरण: भगवद्गीता, भीष्म-युधिष्ठिर संवाद, वसिष्ठ-राम संवाद — ये ज्ञान की स्थिरता और जीवन के मोहभंग के लिए अमोघ उपाय हैं।

4. "सायं भागवतार्थतत्त्वकथया"

सन्ध्या काल में भगवान की लीलाओं और भगवद्भाव की शुद्ध कथा — जैसे श्रीमद्भागवत के नवयोगेन्द्र उपदेश, उद्धवगीत — का श्रवण करें।

इससे हृदय निर्मल होता है और आत्मा में भक्ति की लौ जलती है।

उदाहरण: गृहस्थ यदि सन्ध्या को एक घंटा भागवत कथा सुन ले, तो दिनभर का विष निःशेष हो जाता है।

5. "रात्रौ निदिध्यासनात्"

रात्रि का समय 'निदिध्यासन' — अर्थात् चिन्तनातीत स्थिर आत्मावस्था — में व्यतीत हो।

दिनभर का श्रवण और मनन अब अन्तर्मन में आत्मानुभूति में रूपांतरित हो।

उदाहरण: जैसे दिनभर बोया बीज रात को अँधेरे में भीतर अंकुरित होता है — वैसे ही ज्ञान का फल निदिध्यासन में मिलता है।

6. "कालो गच्छतु नः शरीरभरणं प्रारब्धकन्ठार्पितम्"

जीवन का समस्त समय इस आत्मसाधना में ही व्यतीत हो।

शरीर का पालन केवल प्रारब्ध के भरोसे हो — जैसे कंठ में अर्पित हो गया हो।

उदाहरण: सच्चा साधक पेट की चिन्ता को प्राथमिक नहीं मानता। जैसे राजा जनक, आत्मज्ञानी होकर भी प्रारब्धवश राज्य संभालते थे — पर उनका लक्ष्य केवल आत्मपद था।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

यह श्लोक एक संपूर्ण साधक का दिनचर्यात्मक जीवन प्रस्तुत करता है।

वेद-वेदान्त-कथा-निदिध्यासन — इन चारों से आत्मा की सच्ची सेवा होती है।

शरीर पालन, सांसारिक क्रिया — सब प्रारब्ध के अनुसार हो, पर चित्त हर क्षण साधना में रहे।

श्लोक २ — दुर्वासनाओं का निषेध : अज्ञान, संकल्प, काम, क्रोध, लोभ का परिहार

अज्ञानं त्यज हे मनो मम सदा ब्रह्मात्मसद्भावनात्।
सङ्कल्पानखिलानपि त्यज जगन्मिथ्यात्व सम्भावनात्।
कामं साधनसाधनाश्रम परिध्यानादजस्रं त्यज।
क्रोधं तु क्षमया सदा जहि बलाल्लोभं तु सन्तोषतः॥ २॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवाद:

हे मन! तू ब्रह्म और आत्मा की सच्चिदानन्द स्वरूप भावनाओं द्वारा अज्ञान को त्याग। जगत की मिथ्यात्व भावना से सभी संकल्पों को छोड़ दे। साध्य-साधन की क्लिष्टता का विचार कर कामना को सदा के लिए त्याग। क्षमा के अभ्यास से क्रोध को दूर कर, और सन्तोष के बल से लोभ को समाप्त कर।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण सहित

1. "अज्ञानं त्यज..."

"ब्रह्म सत्यं, जगन्मिथ्या" — यह विचार ही अज्ञान का नाश करता है। अज्ञान से ही 'मैं देह हूँ', 'यह मेरा है', 'मैं सुखी बन जाऊँ' जैसे मिथ्या भाव उत्पन्न होते हैं।

उदाहरण: जिस प्रकार अन्धकार को हटाने के लिए दीपक जलाना पड़ता है, वैसे ही आत्मा की ब्रह्मस्वरूप भावना अज्ञान का दीपक है। जैसे कोई रस्सी को साँप समझकर डरता है — ज्ञान आते ही वह डर समाप्त हो जाता है।

2. "सङ्कल्पानखिलानपि..."

संकल्प-विकल्प ही मन की अशान्ति के मूल हैं। जब जगत ही मिथ्या है — तो उसमें संकल्प क्यों करें?

उदाहरण: बालक स्वप्न में राज्य का अनुभव करे, और जागकर भी उसके सिंहासन की कल्पना करता रहे — यह मूर्खता है। उसी प्रकार जाग्रत में भी संसार की सत्ता का संकल्प, जब वह नश्वर है, भ्रम ही है।

3. "कामं... त्यज"

काम तब उपजता है जब कोई वस्तु प्राप्त करनी हो और मार्ग कठिन हो — साधन और साध्य के प्रयास में मन उलझता है। जब यह देखा कि न तो साध्य शाश्वत है और न साधन सरल — तो काम का त्याग सरल हो जाता है।

उदाहरण: जैसे कोई जल के बुलबुले को पकड़ने दौड़े, पर हर बार हाथ खाली हो — वैसे ही सांसारिक इच्छाएँ अन्त में दुख ही देती हैं।

4. "क्रोधं क्षमया..."

क्रोध दूसरों की त्रुटि देखने से आता है। क्षमा का अर्थ है — सामने वाले की अज्ञानता या परिस्थिति को समझकर मन को सम कर देना।

उदाहरण: जैसे माता अपने बालक की गलती पर क्रोधित नहीं होती — क्योंकि वह जानती है कि वह अभी समझदार नहीं — वैसे ही क्षमाशील साधक सबमें दोष के बजाय कारण देखता है।

5. "लोभं तु सन्तोषतः..."

लोभ — प्राप्त वस्तु से भी अधिक पाने की तृष्णा है। सन्तोष — जो है, उसी में संतुष्टि पाना है।

उदाहरण: जैसे कुआँ यदि भर जाए तो उस पर और जल डालना व्यर्थ है — वैसे ही जिसके भीतर सन्तोष है, वह कभी लोभी नहीं बनता।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

आत्म-भावना से अज्ञान हटता है।

मिथ्या जगत का बोध संकल्पों का नाश करता है।

कामना साध्य-साधन की उलझन से आती है — जब पता चले कि वे तुच्छ हैं, तो काम लुप्त होता है।

क्रोध का समाधान क्षमा है, और लोभ का समाधान सन्तोष।

यह श्लोक मूल रूप से मन को शिक्षित करने की युक्तियाँ देता है — एक उत्कृष्ट मनोविज्ञान।

श्लोक ३ — इन्द्रियविषय, वाणी, संग, गर्व और निन्दा की दुर्वासनाओं का परिहार

जिह्वोपस्थसुखभ्रमं त्यज मनः पर्यन्तदुःखेक्षणात्।
पारुष्यं मृदुभाषणात्त्यज वृथालापश्रमं मौनतः।
दुस्सङ्गं त्यज साधुसङ्गमबलाद्गर्वं तु भङ्गेक्षणात्।
निन्दादुःखमनिन्द्यदेवमुनिभिर्निन्दाकथासंस्कृतेः॥ ३॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवाद:

हे मन! जिह्वा और उपस्थ के क्षणिक सुख की भ्रान्ति को, उसके अन्त में मिलने वाले दुःख को देखकर त्याग दे। कठोर वाणी को कोमल भाषण द्वारा और व्यर्थ बोलने की आदत को मौन से दूर कर। दुष्टों का संग छोड़ और सज्जनों का संग ग्रहण कर। गर्व को, उसके पतन की अनिवार्यता देखकर त्याग दे। निन्दा से उत्पन्न दुःख का त्याग कर, क्योंकि देवता और मुनि कभी निन्दा नहीं करते — यह मन को निर्मल बनाने वाली शिक्षा है।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. "जिह्वोपस्थसुखभ्रमं त्यज..."

मनुष्य जिह्वा (भोजन) और उपस्थ (कामेन्द्रिय) के सुख को सर्वोच्च मान बैठता है — परंतु ये सुख क्षणिक होते हैं और अन्ततः क्लेश ही देते हैं।

उदाहरण: — स्वाद के पीछे दौड़ने से रोग होते हैं, और काम के पीछे दौड़ने से क्षीणता व वैराग्य का क्षय होता है।

— जैसे मधु में विष मिला हो — पहले मीठा लगे, बाद में मारक हो — ऐसे ही इन्द्रिय-सुख हैं।

2. "पारुष्यं मृदुभाषणात्त्यज..."

कटु वचन मन को अशान्त करता है और सम्बन्ध बिगाड़ता है। मृदु वाणी स्वयं भी सुख देती है और दूसरों को भी।

उदाहरण: — राम ने शत्रु से भी कोमलता से बात की — क्योंकि वाणी केवल सूचना नहीं, संस्कार भी देती है।

— "सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्" — यह श्रुति वाणी का आदर्श है।

3. "वृथालापश्रमं मौनतः..."

मन व्यर्थ बातों में ऊर्जा खोता है। मौन केवल बोलना न छोड़ना नहीं — अन्तर्मुखता है।

उदाहरण:— तुलसीदास कहते हैं: "बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।"

— बहुत बोलना बाह्य बड़प्पन दिखाता है, मौन भीतरी गहराई को।

4. "दुस्सङ्गं त्यज..."

दुष्टों का संग दुर्वासनाओं की खान है — उनसे दूर होकर ही मन पवित्र होता है।

उदाहरण: — जैसे कोयले के पास बैठो तो कालिख लगे ही — वैसे ही कुसंग से दोष लगता है।

— बालक यदि व्यसनियों के साथ उठे-बैठे, तो संस्कार वैसे ही बनेंगे।

5. "गर्वं तु भङ्गेक्षणात्..."

गर्व यानी अहं — उसका पतन निश्चित है। जो ऊपर उठता है, उसका झुकना अवश्यंभावी है।

उदाहरण: — रावण का गर्व उसकी मृत्यु का कारण बना।

— जैसे फूला हुआ गुब्बारा थोड़ी चुभन से फूट जाता है — वैसे ही गर्व।

6. "निन्दादुःखमनिन्द्यदेवमुनिभिः..."

निन्दा सुनकर दुखी होना मन की कमजोरी है। देवता और मुनि निन्दा नहीं करते — क्योंकि वे जानते हैं कि निन्दा वाणी का दोष है, वस्तु का नहीं।

उदाहरण:— बुद्ध को निन्दा सुनकर भी मुस्कराते देखा गया।

— एक बार किसी ने उन्हें बहुत अपशब्द कहे। वे बोले: "जो उपहार कोई न ले, वह किसका रहा?"

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

इन्द्रियसुख का मोह — अन्ततः दुःख का कारण है।

वाणी में कोमलता और मौन — साधक की पहली साधना है।

संग का प्रभाव सबसे गहरा होता है — सज्जनों का संग ही जीवन की दिशा बदल देता है।

गर्व को नित्य ही परखते रहना चाहिए — वह सूक्ष्म विष है।

निन्दा से व्यथित न होकर, उसे विवेक का अभ्यास मानना चाहिए।

श्लोक ४ — निद्रा, रोग, दैन्यता, धनसंग्रह, संग और स्त्रीवासना की दुर्वासनाओं का निरसन

मूल श्लोक:

निद्रां सात्विकवस्तुसेवनतया स्वप्नं सदा जागरात्।
रोगान् जीर्णमिताशनाद्दैन्यं महाधैर्यतः।
अर्थानर्थपरिग्रहं त्यज वृथा संसर्गसन्त्यागतः।
स्त्रीवाञ्छां त्यज दोषदर्शनबलाद्दुःखं सुखात्मेक्षणात्॥ ४॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवाद:

सात्त्विक आहार द्वारा नींद को कम करो और जागरूकता से स्वप्नों से ऊपर उठो। मित और सुपाच्य भोजन से रोगों को दूर करो तथा महान धैर्य से दैन्यता (हीनता) को छोड़ो। अनर्थकारी धन-संग्रह को त्याग दो और व्यर्थ संग से उत्पन्न क्लेश से दूर रहो। स्त्री के प्रति वासना को उसमें उपस्थित दोषों के विवेकपूर्ण दर्शन से छोड़ो, और आत्मा को ही सुख का मूल मानो।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. "निद्रां सात्विकवस्तुसेवनतया... स्वप्नं सदा जागरात्"

— निद्रा एक जैविक आवश्यकता है, परंतु साधक को उसकी मात्रा संयमित रखनी चाहिए।

— अधिक निद्रा तमोगुण को बढ़ाती है, जबकि सात्त्विक आहार व जीवनचर्या जागरूकता लाती है।

उदाहरण:— रामकृष्ण परमहंस चार घंटे से अधिक कभी नहीं सोते थे, पर शरीर पूर्णतः स्वस्थ रहता था।

— स्वप्नों का पीछा करने से चित्त चंचल होता है। उसे वर्तमान की जागरूकता में लाना ही साधना है।

2. "रोगान् जीर्णमिताशनात्..."

— रोगों का मूल है — अधिक, अमित, और असात्त्विक भोजन।

— आयुर्वेद भी कहता है: "हिता भुक्, मिता भुक्, ऋतुभुक्" — ये ही आरोग्य की कुंजी हैं।

उदाहरण:— चाणक्य कहते हैं — भोजन दवा के समान करो, स्वाद के नहीं।

— संयमी भोजन जीवनशक्ति को स्थिर करता है।

3. "दैन्यं महाधैर्यतः"

— आत्मज्ञान के अभाव में मनुष्य खुद को तुच्छ मानता है — यह 'दैन्यता' है।

— परन्तु उपनिषद् कहते हैं: "तत्त्वमसि" — तू वही ब्रह्म है!

— इस भाव से महाधैर्य जन्मता है।

उदाहरण:— एक साधक अपने में ब्रह्म का दर्शन करता है — तो गरीबी, उपेक्षा, विफलता उसे नहीं तोड़ सकती।

4. "अर्थानर्थपरिग्रहं त्यज"

— अत्यधिक धन संग्रह अनेक अनर्थों को जन्म देता है — चिंता, द्वेष, चोरी, हिंसा आदि।

— अतः जीवनोपयोगी साधन तक ही सीमित रहना श्रेयस्कर है।

उदाहरण:— राजा जनक महालक्ष्मीपति होते हुए भी "असंग" थे — हृदय में त्याग, भले बाहर भोग।

5. "वृथा संसर्गसन्त्यागतः"

— व्यर्थ संग (फालतू बातें, निम्न संगति, अज्ञानियों का साथ) — साधना में सबसे बड़ा विघ्न है।

— इसलिए 'मौन', 'एकान्त' और 'सत्संग' — ये ही मन की सुरक्षा हैं।

उदाहरण:— एकांतवास में वाल्मीकि ऋषि 'मारक' से 'महाकवि' बन गये।

6. "स्त्रीवाञ्छां त्यज दोषदर्शनबलात्..."

— काम वासना — गहराई में बाह्य आकर्षण की मोह-ग्रंथि है।

— जब हम स्त्री (या कोई विषय) के वास्तविक दोष, क्षणिकता, शरीर की नश्वरता आदि को देखें — तो वासना गलने लगती है।

उदाहरण:— बुद्ध ने युवावस्था में ही मृत्यु, रोग और वृद्धावस्था के दर्शन से — वासना का मोह त्याग दिया।

7. "दुःखं सुखात्मेक्षणात्"

— सुख की खोज विषयों में नहीं, स्वात्मा में है।

— आत्मा — न दुःख से द्रवित होती है, न सुख से मोहित — वह तो साक्षी है।

— जो इसे जानता है, वही मुक्त होता है।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

नींद कम नहीं, सत्संगत होनी चाहिए — जिससे जागरूकता बढ़े।

भोजन साधना का भाग है — संयम ही आरोग्य है।

आत्मज्ञान से ही हीनता दूर होती है — "अहं ब्रह्मास्मि" का भाव धारण करो।

धन केवल साधन है — साध्य नहीं।

संग ही वृत्ति का बीज है — विवेक से संग का चयन करो।

विषयों की वासना त्यागने का उपाय — दोषदृष्टि और आत्मा में सुख का बोध।

श्लोक ५ — आसक्ति, मोह, लोभ, गर्व और इन्द्रियद्वार दुर्वासनाओं का त्याग

दारासक्तिमनादरात्सुतधनासक्तिं त्वनित्यत्वतः।
स्नेहं मोहविसर्जनात्करुणया नैष्ठुर्यमन्तस्त्यज।
औदासीन्यसमाश्रयात्त्यज सुहृन्मित्रारिदुर्वासना।
सर्वानर्थकरान्दशेन्द्रियरिपूनेकान्तवासान्जहि॥ ५॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवादः

पत्नी के प्रति आसक्ति को उपेक्षा से छोड़ो, पुत्र और धन के प्रति ममता को उनके नश्वर स्वरूप को देखकर त्यागो। मोह का विसर्जन कर स्नेह की आसक्ति से मुक्त हो जाओ और करुणा द्वारा हृदय की कठोरता को त्यागो। उदासीनता (समता) के बल से मित्र, शत्रु और सखा के भेद से उत्पन्न दुर्वासनाओं को छोड़ो। दसों इन्द्रिय-रूपी शत्रुओं को एकांतवास के अभ्यास द्वारा नियंत्रित करो।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. “दारासक्तिमनादरात्”

— पत्नी या जीवनसंगिनी के प्रति 'संबंध' होना गलत नहीं है, परंतु मोहयुक्त आसक्ति — साधक के लिए बाधक है।

— यह उपेक्षा का भाव बाह्य नहीं, भीतर का वैराग्य है।

उदाहरणः— याज्ञवल्क्य जी ने अपनी पत्नी मैत्रेयी को ज्ञानदान करते हुए कहा —

"न त्वया अर्थोऽस्ति... आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः।"

(तुम्हारा उद्देश्य आत्मा की प्राप्ति हो — न कि मेरा संग।)

2. “सुतधनासक्तिं त्वनित्यत्वतः”

— पुत्र और धन नश्वर हैं — ये आत्मा के संग नहीं जाते।

— जो वस्तु परिवर्तनशील है, उस पर ममता करना मिथ्या आश्रय है।

उदाहरणः— भरत जी ने वन में माँ कैकेयी के प्रति क्षोभ नहीं रखा, न सिंहासन के प्रति ममता

क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि ये सब अनित्य हैं।

3. "स्नेहं मोहविसर्जनात्"

— स्नेह भी यदि 'मोह' से प्रेरित है, तो वह बंधन है।

— प्रेम और आसक्ति में भेद है — प्रेम निर्मल होता है, आसक्ति स्वार्थपूर्ण।

उदाहरण:— शिवजी सती के शरीर को लेकर भ्रमण कर रहे थे — नारायण ने उनका मोह तोड़ा।

जब मोह गया — शिव फिर समाधिस्थ हो गये।

4. "करुणया नैष्ठुर्यमन्तस्त्यज"

— कठोरता (नैष्ठुर्य) साधक के भीतर कभी न रहे।

— करुणा — हृदय की सजलता है।

— त्याग करुणा से हो — तो वह दिव्य होता है।

उदाहरण:— बुद्ध ने अपने हत्यारे अंगुलिमाल को भी करुणा से परिवर्तित कर दिया।

5. "औदासीन्यसमाश्रयात्त्यज सुहृन्मित्रारिदुर्वासना"

— मित्र, शत्रु, सखा — ये भेद चित्त की दुर्बलता से उपजते हैं।

— जो समभाव में स्थित है — वही मुक्त है।

उदाहरण:— रामजी ने विभीषण से भी मित्रता की, और रावण का भी अंतिम संस्कार करवाया — क्योंकि भेद नहीं, समत्व था।

6. "सर्वानर्थकरान्दशेन्द्रियरिपून् एकान्तवासान्जहि"

— दसों इन्द्रियाँ (नेत्र, श्रोत्र, रसना आदि) — अनियंत्रित हों तो मनुष्य पतन की ओर जाता है।

— इन्हें वश में करने का सर्वोत्तम उपाय — एकांतवास, मौन, ध्यान।

उदाहरण:— शंकराचार्य जी की साधना, गौड़पादाचार्य का मौन, शिवजी की तपस्या — सबका मूल इन्द्रियनिग्रह था।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

संबंध निभाओ, पर ममता रहित होकर।

पुत्र, धन, पत्नी — सब सेवा के माध्यम हों, पर आत्मस्वरूप की स्मृति बनी रहे।

मोह से मुक्त स्नेह — ही प्रेम है।

भीतर करुणा और बाहर समत्व — यही साधक का आभूषण है।

इन्द्रियों को संयम में रखने के लिए एकांत, सत्संग, मौन और स्वाध्याय को जीवन का हिस्सा बनाओ।

श्लोक ६ — आलस्य, प्रमाद, द्वैत-दृष्टि, आक्रोश और भय जैसे मानसिक दोषों की साधनापूर्वक निवृत्ति

आलस्यं त्वरया श्रमं श्रमधिया तन्द्रीं समुत्थानतः।
भेद भ्रान्त्यभेददर्शनबलात्तां मिथ्यात्वतः सत्यताम्।
मर्मोक्तिं निजमर्मकर्मकथया क्रोधं स्वसाम्येक्षणात्।
आक्रोशं कुशलोक्तितस्य च मनश्छिन्ध्यप्रमादो भयम्॥ ६॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवादः

आलस्य को तत्परता से, परिश्रम को उसके फलदायी उद्देश्य से, तन्द्रा को उत्साह से दूर करो। द्वैत-दृष्टि को अद्वैत के ज्ञान से हटाओ और मिथ्या को सत्य के विवेक से त्यागो। किसी की गूढ़ बातों को स्वयं के अनुभव से जोड़कर क्रोध का नाश करो। आक्रोश का उत्तर शुभ वाणी से दो, और अपने मन को प्रमाद और भय से मुक्त करो।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. “आलस्यं त्वरया”

— आलस्य तमोगुण की उपज है।

— इसे केवल शारीरिक त्वरिता से नहीं, संकल्पबल से हराया जा सकता है।

— “अभी नहीं तो कभी नहीं” — यह भाव जगाओ।

उदाहरणः— अर्जुन को युद्ध के समय विषाद हुआ, वह आलस्य और मोह से खिंच रहा था — श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से उसमें त्वरिता और आत्मबोध जगाया।

— "क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ..."

2. “श्रमं श्रमधिया”

— परिश्रम कठिन लगे, तो उसे ‘साधन’ मानकर करो।

— यज्ञबुद्धि से किया गया श्रम, क्लेश नहीं देता।

उदाहरण:— एक साधक प्रतिदिन चार बजे उठकर तप करता है — वह थकता नहीं, क्योंकि लक्ष्य आत्मज्ञान है।

3. “तन्द्रीं समुत्थानतः”

— आलस्य से एक स्तर ऊपर है तन्द्रा (मन की नीरसता)।

— यह न उत्सव है, न निद्रा — बस व्यर्थ बहता समय है।

— इससे उठो — उद्यम, स्वच्छ जल, प्रकाश, स्वाध्याय से।

उदाहरण:— रामकृष्ण परमहंस कहते थे — “जागो, उठो, जब तक लक्ष्य न मिले, रुको मत।”

4. “भेद भ्रान्त्यभेददर्शनबलात्”

— संसार में जो भेद दिखता है — वह माया की दृष्टि से है।

— ज्ञान की दृष्टि से सब एक ब्रह्मस्वरूप हैं।

उदाहरण:— श्वेतकेतु को जब अपने पिता उद्दालक ने समझाया:

"तत्त्वमसि श्वेतकेतो",

तब भेदबुद्धि का नाश हुआ।

5. “तां मिथ्यात्वतः सत्यताम्”

— जो सत्य नहीं है, उस पर विश्वास करना — मिथ्यात्व है।

— अस्थायी वस्तुओं में नित्यता की आशा — यही अज्ञान है।

उदाहरण:— मृग मरीचिका में जल मानकर भागता है — वह सत्य नहीं, भ्रांति है।

6. “मर्मोक्तिं निजमर्मकर्मकथया”

— जब कोई हमें टोकता है, तो उसे अपमान मानना भ्रम है।

— उसकी बात को अपने आत्ममंथन से जोड़ो — शायद वही चेतावनी है।

उदाहरण:— तुलसीदास जी कहते हैं:

"जौं कहहिं कुठार कि काठ कठोर, फाटत नाहीं तासु उर मोर।"

(यदि कोई कटु कहे, और वह हृदय न फटे — तो दोष मेरा ही है।)

7. “क्रोधं स्वसाम्येक्षणात्”

— जब क्रोध आये, तो यह स्मरण करो — मेरे भीतर भी वैसी ही दुर्बलता थी/है।

— यह समता-दृष्टि क्रोध को गलाने लगती है।

उदाहरण:— विदुर ने दुर्योधन की क्रूरता का उत्तर मौन और समता से दिया।

8. “आक्रोशं कुशलोक्तितस्य च”

— जब कोई आक्रोश करता है, तब उसका उत्तर शांत-संवेदनशील शब्दों से दो।

— यह आक्रोश का निवारण करता है — दोनों के लिए।

उदाहरण:— बुद्ध के समक्ष एक व्यक्ति ने कटु वचन कहे — बुद्ध ने केवल पूछा,

“यदि तुम मुझे यह भेंट नहीं देते, तो वह किसके पास रहती?”

9. “मनश्छिन्ध्यप्रमादो भयम्”

— प्रमाद यानी जागते हुए भी सोये रहना — यह साधक का सबसे बड़ा शत्रु है।

— भय का कारण है — देहाभिमान और अज्ञात की आशंका।

— प्रमाद और भय दोनों को आत्मज्ञान के तेज से नष्ट करो।

उदाहरण:— युधिष्ठिर को प्रमाद कभी नहीं था — वे सदैव सावधान धर्मनिष्ठा में रहते थे।

— गीता कहती है: "न त्वं शोचति न काङ्क्षति" — यही निर्विकल्प अवस्था है।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

जाग्रत रहो — शरीर नहीं, चित्त भी।

श्रम को यज्ञ समझो, आलस्य को त्यागो।

द्वैत नहीं — अद्वैत दृष्टि ही मुक्ति है।

जो टोकता है, उसे गुरु बनाओ — वह तुम्हारा हित कर रहा है।

क्रोध का उत्तर करुणा से, और आक्रोश का शमन शुभ वाणी से।

भय और प्रमाद का शमन — आत्मस्वरूप की सतत स्मृति से।

श्लोक ७ — संकल्पशक्ति की निर्मलता, माया का विघटन और सत्यस्वरूप की साधना

निश्चिन्तं गुरुवाक्यबद्धमखिलं माया-व्यथायाः परम्।
निद्रां स्वप्नमवेद्यमस्तिगततां निश्चेष्टता-शून्यताम्।
दैन्यं ब्रह्मविभावनापरिणतिं स्फूर्त्यैकतानं स्वयं।
सत्यम्भावय चेतसा स्वसुखदं निर्वासनं निर्वृतिम्॥ ७॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवाद:

गुरु-वचनों से बँधी हुई निश्चिन्तता को अपनाओ, जो माया की व्यथाओं से परे है। निद्रा, स्वप्न और अविद्या की अवस्थाओं का अतिक्रमण कर चित्त को निश्चेष्ट और निर्विकार बनाओ। दैन्यता का रूपांतरण ब्रह्मभावना में कर, आत्मा की अखंड चेतनता को धारण करो। इस प्रकार सत्यस्वरूप सुखद आत्मा की भावना करते हुए सभी वासनाओं का अंत कर, पूर्ण निर्वृत्ति प्राप्त करो।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. "निश्चिन्तं गुरुवाक्यबद्धमखिलं"

— सत्य ज्ञान की पहली सीढ़ी है — संपूर्ण समर्पण।

— मन अपने निर्णयों से हारा है — अब वह गुरु-वाक्य में बँधे।

उदाहरण:— श्रीराम, विश्वामित्र के एक इशारे पर चल पड़े।

— गुरुवाक्य के प्रति ऐसी श्रद्धा ही मन को निश्चिन्त बनाती है।

2. "माया-व्यथायाः परम्"

— माया का मूल है — द्वैत, परिवर्तन, अपेक्षा।

— गुरु-वाक्य में लीन मन इन सब से परे हो जाता है।

उदाहरण:— जब नचिकेता ने यमराज से सत्य का ज्ञान माँगा — तब सभी मायिक लोभ ठुकरा दिए।

3. "निद्रां स्वप्नमवेद्यमस्तिगततां"

— जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति — तीनों अवस्थाएँ आत्मा पर आच्छादन करती हैं।

— साधक को इनसे पार जाना है — तुरीय में प्रतिष्ठित होना है।

उदाहरण:— माण्डूक्य उपनिषद् कहता है:

"नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं... न प्रज्ञानघनं... स आत्मा स विज्ञेयः।"

4. "निश्चेष्टता-शून्यताम्"

— चित्त की चपलता जब शांत हो जाए — तब ही आत्मा की स्फूर्ति जागे।

— 'निश्चेष्टता' यानी इच्छाओं का अभाव, और 'शून्यता' यानी विकारों से रिक्तता।

उदाहरण:— ध्यान में बैठा योगी बाहर से स्थिर दिखता है, पर भीतर तेजस्वी होता है — यही "निश्चेष्टता-शून्यता" है।

5. "दैन्यं ब्रह्मविभावनापरिणतिं"

— "मैं पापी हूँ", "मैं अधम हूँ" — यह दैन्य जब ब्रह्मबोध से जुड़ता है, तो आत्म-प्रकाश बनता है।

— अपने दोषों को देखकर रोना नहीं, उन्हें ब्रह्मचिन्तन में गलाना — यही साधना है।

उदाहरण:– नारद पहले मोह से भ्रमित हुए, फिर वह "नारायण नारायण" में लीन हो गए — यह दैन्य का ब्रह्म-विभाव है।

6. "स्फूर्त्यैकतानं स्वयं"

– आत्मा सदैव जागृत, सर्वज्ञ और चेतनस्वरूप है।

– जब चित्त एकाग्र होता है, तब वह स्व-स्फूर्त आत्मा को जानने लगता है।

उदाहरण:– जैसे सूर्यस्थानी लेंस से अग्नि उत्पन्न होती है — वैसे ही चित्त की एकतानता से आत्मा का बोध प्रकट होता है।

7. "सत्यम्भावय चेतसा स्वसुखदं"

– सत्य यानी ब्रह्म — वही स्वानंदस्वरूप है।

– उसे केवल भाव से नहीं, चेतन एकाग्रता से अनुभव करो।

उदाहरण:– गीता: "ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा…" — जब ब्रह्मभाव आता है, तो मन स्वतः प्रसन्न रहता है।

8. "निर्वासनं निर्वृतिम्"

– वासनाएँ ही पुनर्जन्म का कारण हैं।

– जब वासनाएँ गलती हैं — तो निर्वासना दशा आती है — वही निर्वृत्ति, परम विश्रांति।

उदाहरण:– याज्ञवल्क्य ने पत्नी मैत्रेयी से कहा:

"न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति — आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति।"

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

मन को गुरु-वाक्य में बाँध दो — वही सबसे बड़ा बल है।

निद्रा, स्वप्न, और सुषुप्ति की भ्रमित अवस्थाओं से ऊपर उठो।

ब्रह्मभाव से ही दैन्य गलता है, और आत्मा की चेतना प्रकट होती है।

वासनाओं से रहित मन ही आत्मसुख का अधिकारी बनता है।

श्लोक ८ — ध्यान का महत्त्व, बुद्धि की शुद्धि और आत्मज्ञान का प्रकाश

शान्त्या पञ्चविधेन तद्विरहिणां व्यामोहतः क्लेशिनां
गाढस्वप्नमथन्द्रतारकणितं संज्ञानहीनं मनः।
ध्यानाब्यासवशाद्दृढं च विमलं ध्यातव्यदृग्भावनात्।
ध्याता ध्येयविहीनतां च गतवान् ध्येयं परं ज्योतिषः॥ ८॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवाद:

पाँच प्रकार की शान्ति के अभाव से, मोहग्रस्त मन क्लेश से घिरा रहता है — वह गहन निद्रासमान, जड़ता से भरा और ज्ञानशून्य होता है। परन्तु जब ध्यान का अभ्यास दृढ़ होता है, तब चित्त निर्मल और दृढ़ बनता है, और आत्मा के साक्षात् दर्शन की भावना जागती है। ध्यान करते-करते साधक ध्यानकर्ता, ध्यान और ध्येय — इन तीनों से पार होकर परब्रह्मरूप परम प्रकाश में लीन हो जाता है।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. "शान्त्या पञ्चविधेन तद्विरहिणां व्यामोहतः क्लेशिनां"

– मन में शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा — इन पाँच शान्तियों की कमी होने से

– व्यक्ति व्यामोह (भीतर-बाहर का भ्रम) और क्लेश (मानसिक पीड़ा) से भर जाता है।

उदाहरण:– अर्जुन का चित्त कुरुक्षेत्र में शान्त न था — व्यामोह से पीड़ित होकर उन्होंने कहा:

"न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद्यच्छोकम्…"

2. "गाढस्वप्नमथन्द्रतारकणितं संज्ञानहीनं मनः"

– यह मन नींद जैसा गहरा हो जाता है —

– न तो बाहर सजग है, न भीतर जागृत —

– इसमें प्रमाद (थकावट) और जड़ता की बिजली सी चमकती है।

उदाहरण:– किसी मनुष्य का दिनभर काम में मन नहीं लगता, पर रातभर मोबाइल देखता है — यह गाढस्वप्नवत, संज्ञानहीन मन की स्थिति है।

3. "ध्यानाब्यासवशाद्दृढं च विमलं"

– ध्यान के अभ्यास से मन न केवल स्थिर होता है, अपितु दृढ़ (अचल) और विमल (निर्मल) हो जाता है।

उदाहरणः– जैसे धूप में जल की तरंगें शांत होने पर तल साफ दिखता है, वैसे ही ध्यान से मन निर्मल हो आत्मतत्त्व दर्शाता है।

4. “ध्यातव्यदृग्भावनात्”

– ध्यान करते हुए साधक में यह भावना बलवती होती है कि

– “मैं वह ‘द्रष्टा’ आत्मा हूँ, जिसे देखा जा सकता है नहीं — जो स्वयं सबको देखता है।”

उदाहरणः– "द्रष्टा द्रश्यविभागे चित्ये चेत्यन्तरात्मनि।

दृग्दृश्यविवेकोयं नित्यमेव प्रकाशते॥" — (दृग्दृश्यविवेक)

5. “ध्याता ध्येयविहीनतां च गतवान्”

– जब ध्यान पूरी परिपक्कता को पहुँचता है,

– तो साधक (ध्याता), ध्यान की क्रिया और ध्येय — तीनों का भेद मिट जाता है।

– यह अवस्था ध्यानातीत समाधि की है।

उदाहरणः– पतंजलि योगसूत्र: “तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः” — ध्यान जब केवल ‘अर्थ’ में स्थित हो जाए।

6. “ध्येयं परं ज्योतिषः”

– अंततः वही परम ब्रह्म — परं ज्योतिः है।

– गीता में भगवान कहते हैं:

“तमेव भान्तमनुभाति सर्वं…” — वही आत्मा है, जिससे सब प्रकाशित होता है।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

पाँच शान्तियों के बिना मन सदा अशान्त रहेगा — अभ्यास से उन्हें अर्जित करें।

ध्यान से ही मन के मोह, प्रमाद, जड़ता और क्लेश गलते हैं।

जब ध्यान परिपक्क हो जाए — तो साधक ध्यान से भी पार जाकर आत्मा में स्थित होता है।

अंतिम अनुभव — ‘मैं’ नहीं, केवल परम ज्योति — परब्रह्म शेष रहता है।

श्लोक ९ — देह की नश्वरता और आत्मपथ की शीघ्रता

आयुर्गच्छति पेटिकामिव जलं सन्त्यज्य देहं जवात्।
गच्छन्तीन्द्रियशक्तयोऽपि कुलटा यद्वन्नरं निर्धनम्।
प्रज्ञा गच्छति दावदाहसमये श्रेणी मृगीणामिव।
ज्ञात्वा सत्वरमाश्रयमात्मपदवीं देहं वृथा मा कृथाः॥ ९॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवाद:

आयु जैसे पात्र में रखा जल धीरे-धीरे समाप्त होता है, वैसे ही जीवन प्रतिपल क्षीण हो रहा है — अतः इस देह को शीघ्र आत्ममार्ग में लगाओ। जैसे कुलटा स्त्री निर्धन पति को छोड़ देती है, वैसे ही इन्द्रियशक्तियाँ अंततः शरीर को त्याग देती हैं। अग्नि से भयभीत होकर जैसे हिरणों की पंक्ति भाग जाती है, वैसे ही संकट में बुद्धि साथ नहीं देती। यह समझकर शीघ्र आत्मपद का आश्रय लो — अन्यथा यह देह व्यर्थ चली जाएगी।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण

1. "आयुर्गच्छति पेटिकामिव जलं सन्त्यज्य देहं जवात्"

– जैसे पात्र में भरा जल बूँद-बूँद कर सूख जाता है, वैसे ही हमारी आयु हर क्षण घटती जा रही है।

– इसलिए देह को विलास में न लगाकर, शीघ्र आत्मसाधना में प्रवृत्त करो।

उदाहरण:– एक दीपक की बाती धीरे-धीरे जलती है, पर उसकी लौ को यदि साधन न मिले तो वह क्षीण होकर बुझ जाती है।

– ऐसे ही बिना साधना के देह केवल क्षय का माध्यम बनती है।

2. "गच्छन्तीन्द्रियशक्तयोऽपि कुलटा यद्वन्नरं निर्धनम्"

– जैसे कुलटा स्त्री जब पति निर्धन हो जाए, तो उसे छोड़ देती है,

– वैसे ही बुढ़ापे में इन्द्रियाँ — आँख, कान, हाथ, पाँव — सब शक्ति खो बैठती हैं।

उदाहरण:– वृद्धावस्था में सुनना कम, देखना धुँधला, चलना कठिन हो जाता है — यह सब इन्द्रियों का परित्याग है।

3. "प्रज्ञा गच्छति दावदाहसमये श्रेणी मृगीणामिव"

– जैसे जंगल में अग्नि लगने पर हिरणों की पंक्ति घबरा जाती है और मार्ग भूल जाती है,

– वैसे ही संकट के समय बुद्धि भी मार्गदर्शन नहीं कर पाती।

उदाहरणः– परीक्षा के समय जिसने अभ्यास न किया हो, उसकी स्मृति घबरा जाती है।

– मृत्यु समीप हो और साधक ने आत्मा का साक्षात्कार न किया हो — तब 'प्रज्ञा' भी साथ नहीं देती।

4. "ज्ञात्वा सत्वरमाश्रयमात्मपदवीं देहं वृथा मा कृथाः"

– यह सब जानकर, शीघ्र आत्मपद का आश्रय लो —

– अन्यथा यह देह केवल रोग, मृत्यु और शोक में बीतकर व्यर्थ चली जाएगी।

उदाहरणः– जैसे व्यक्ति जलती नाव में बैठा हो, और फिर भी किनारे की ओर न जाए — तो उसका डूबना निश्चित है।

– इसी प्रकार आत्मसाधना को टालना — जीवन की सबसे बड़ी मूर्खता है।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

आयु बहती धारा है — इसे आत्मबोध की दिशा दो।

इन्द्रियाँ और बुद्धि सदा साथ नहीं देंगी — आत्मा ही शाश्वत सहारा है।

आत्मपथ को जितना टालते जाओगे, मृत्यु उतनी ही पास आती जाएगी।

इस देह को व्यर्थ मत गँवाओ — इसे परमपद की सीढ़ी बनाओ।

श्लोक १० — आत्मसाधना की सम्पूर्ण संपदा और मुक्ति की सेवा

धैर्यैरावतशान्तिधेनुदमना मन्दारवृक्षं सदा।
मैत्र्याद्यप्सरसं विवेकतुरगं सन्तोषचिन्तामणिम्।
आत्मज्ञानमहामृतं समरसं वैराग्यचन्द्रोदयम्।
वेदान्तार्णवमाश्रयन्ननुदिनं सेवस्व मुक्तिश्रियम्॥ १०॥

संक्षिप्त शुद्ध हिन्दी अनुवादः

धैर्य रूपी ऐरावत, शान्ति रूपी कामधेनु, इन्द्रिय-निग्रह रूपी कल्पवृक्ष, मैत्री आदि सद्गुण रूपी अप्सरा, विवेक रूपी घोड़ा, सन्तोष रूपी चिंतामणि, आत्मज्ञान रूपी अमृत, और वैराग्य रूपी चंद्रमा को लेकर — वेदान्त रूपी सागर में प्रवेश करो और प्रतिदिन मुक्ति रूपी लक्ष्मी की सेवा करो।

विस्तृत भावार्थ + उदाहरण सहित व्याख्या

1. "धैर्यैरावतशान्तिधेनुदमना मन्दारवृक्षं सदा"

आत्मपथ में 'धैर्य' वह ऐरावत (महागज) है जो अविचल बल देता है।

'शान्ति' वह कामधेनु है जो अन्तर्मन की समृद्धि लाती है।

'इन्द्रिय-निग्रह' वह मन्दार (कल्पवृक्ष) है जो इच्छाओं को दिव्य दिशा देता है।

उदाहरण:-जैसे अर्जुन को कुरुक्षेत्र में धैर्य और विवेक मिला, वैसे ही साधक को भी साधना में धैर्य चाहिए।

इन्द्रियों को संयमित किए बिना आत्मलक्ष्य प्राप्त नहीं होता।

2. "मैत्र्याद्यप्सरसं विवेकतुरगं सन्तोषचिन्तामणिम्"

'मैत्री, दया, क्षमा, जैसे गुण' सुन्दर अप्सराएँ हैं — जो साधक को भीतर से प्रसन्न और पवित्र बनाती हैं।

'विवेक' वह घोड़ा है जो आत्ममार्ग में तीव्र गति देता है।

'सन्तोष' वह चिंतामणि है जो सभी मानसिक व्यग्रताओं को हरता है।

उदाहरण:-साधक यदि केवल बाह्य नियमों में उलझा रहे और अन्तर्मन में क्रोध, घृणा हो — तो वह आत्मसाधना की दिशा में नहीं जा सकता।

विवेकहीन व्यक्ति रथ तो चलाता है, पर दिशा नहीं जानता — साधना विवेक से ही सार्थक है।

3. "आत्मज्ञानमहामृतं समरसं वैराग्यचन्द्रोदयम्"

'आत्मज्ञान' वह अमृत है जो मृत्यु और भय का नाश करता है।

'वैराग्य' वह चन्द्रमा है जिसकी शीतल किरणें संसार-ताप को शांत करती हैं।

आत्मज्ञान और वैराग्य — ये दोनों साथ हों तो साधक निर्मल रस में स्थित हो जाता है।

उदाहरण:

राजा जनक के जीवन में यह दोनों थे — ज्ञान भी और वैराग्य भी — तभी वे राजकार्य करते हुए भी मुक्त थे।

4. "वेदान्तार्णवमाश्रयन्ननुदिनं सेवस्व मुक्तिश्रियम्"

इन समस्त दिव्य साधनों को साथ लेकर — वेदान्त रूपी महासागर में प्रतिदिन डुबकी लगाओ।

यही सतत सेवा है — मुक्ति रूपी लक्ष्मी की।

यह सेवा बाह्य नहीं, आत्मा की आन्तरिक उपासना है।

उदाहरण:

जैसे किसान प्रतिदिन सिंचाई करता है, वैसे ही आत्मा की खेती भी नित्य चिन्तन, मनन, और निदिध्यासन से सिंचित होती है।

जीवनोपयोगी निष्कर्ष:

आत्मसाधना कोई एक उपाय नहीं, यह अनेक गुणों और साधनों का समुच्चय है।

धैर्य, शान्ति, विवेक, सन्तोष, वैराग्य, आत्मज्ञान — ये सभी एक सजग साधक की पूँजी हैं।

इन दिव्य साधनों से युक्त होकर जब हम वेदान्त रूपी सागर में उतरते हैं, तभी मुक्ति की देवी हमारी सेवा स्वीकार करती है।

'दुर्वासना प्रतिकार दशकम्'

ॐ शांति शांति शांति